

असम में वैष्णव धर्म:

भारत में 13 वीं व 14 वीं सदी के दौरान ऐसी शक्तियों का जाल विद्यमान था जिन्होंने हिन्दुत्व के नए आयामों के उत्थान को प्रेरित किया। ऐसे ही एक आयाम का उदय भक्ति के उदारवादी सिद्धान्त पर हुआ जिसने हिन्दुत्व के दर्शन का जटिल संस्कृत परंपरा से सरल समझने योग्य लोकभाषा में सरलीकरण कर दिया। यह एक प्रगतिशील व लोकतान्त्रिक आंदोलन था जिसने देवत्व की एकता पर बल दिया, जो अत्यधिक अनुस्थानवाद के खिलाफ खड़ा हुआ, अविरल भक्ति पर आधारित विश्वास का प्रसार किया व जातीय पूर्वाग्रहों के खिलाफ संघर्ष किया तथा मानव की समानता पर जोर दिया। संस्कृत पुराणों के सुविचारों को क्षेत्रीय भाषा में लोगों तक पहुंचाने के लिए विभिन्न प्रान्तों में कई महान संतों का उदय हुआ। इन संतों में इलाहाबाद के एक ब्राह्मण, रमानन्द सर्वाधिक प्रभावशाली व्यक्ति थे जिनका तत्कालीन समय में अपने क्षेत्र में प्रथम स्थान था (1400-1470ई0)। वे राम के पूजक थे और उन्होंने अपने सिद्धांतों का प्रसार हिन्दी भाषा में किया। कबीर (1440-1470ई0) उनके प्रमुख शिष्यों में से एक थे। आंदोलन के दूसरे प्रमुख अगुवाकर वल्लभचार्य (1479-1531), तेलगू देश के एक ब्राह्मण थे। उन्होंने कृष्ण की उपासना की व दक्षिण में अपने सिद्धांतों का प्रसार किया। महाराष्ट्र में भक्ति के धर्म का प्रसार नामदेव (1400-143ई0) ने किया जो जाति से दर्जी थे। बंगाल में नादिया के एक ब्राह्मण परिवार में जन्म लेने वाले प्रख्यात संत चैतन्य (1485-1533ई0) का उदय हुआ। असम में कई प्रतिभाओं के धनी संत शंकरदेव (1449-1569ई0) का उदय हुआ जो जाति से एक कायस्थ थे तथा जिन्होंने आने वाली सदियों के लिए राज्य के लोगों के धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व शैक्षिक जीवन को तराशने का कार्य किया। उनके उदय के समय असम की राजनीतिक स्थिति कई स्वतंत्र सिद्धांतों का समूह थी। चूतिया लोग देश के अधिकांश पूर्वी भाग पर शासन करते थे जबकि दक्षिण पूर्वी भाग कछारी शासकों के अधीन था। चूतियाओं के पश्चिमी व कचारियों के दक्षिण में भुईया गोत्र प्रभुत्व में था। सुदूर दक्षिण में कमाता गोत्र स्थित था, जो कोच राजाओं के प्रभुत्व के समय कूच बिहार के नाम से जाना गया। शेष ब्रह्मपुत्र घाटी अहोम राजाओं

द्वारा शासित थी। इस प्रकार संघर्षशील राजनीतिक शक्तियों ने असम के लोगों को एक दूसरे से अलग करने का कार्य किया। फिर भी असम विभिन्न प्रजातियों, जनजातियों, विश्वासों और संस्कृतियों के लिए एक खुशहाल घर था और इन भिन्न-भिन्न लोगों की सामाजिक संस्थाएं प्रचलित हिन्दू धर्म का हिस्सा थीं तथा तांत्रिक व्यवस्था का निर्माण करती थीं। लंबे गूढ़ कर्मकांड, जादू, मंत्र, जादू-टोना और बाली तांत्रिक व्यवस्था का हिस्सा थे जो शंकरदेव से पूर्व सदियों से प्रचलन में थे। ऐसे राजनीतिक विभाजन व धार्मिक क्षरण के समय शंकरदेव एक जोड़क शक्ति व उम्मीद की एक किरण के रूप में सामने आए। एक विकाशशील धर्म और समान राष्ट्रीय भाषा और साहित्य के साथ उन्होंने असम की राजनैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और भाषाई उन्नति हेतु मार्ग प्रशस्त किया। इन राज्यों के कुछ राजाओं का संरक्षण प्राप्त होने के कारण नए विश्वासों को आगे बढ़ाने में मदद मिली और मूलरूप से एक धार्मिक आंदोलन ने कई तरह से कला व साहित्य को प्रभावित किया। कूच बिहार के शासकों ने विद्वानों को महाभारत व पुराण के अनुवाद हेतु संरक्षण प्रदान किया।

अहोम राजाओं ने भी विशेष रूप से साहित्यिक गतिविधियों को प्रोत्साहित किया और बुरंजिस नामक नए प्रकार के लेखन (गद्य) को संभव बनाया।

स्वामी विवेकानंद ने कहा था की विश्व के सभी धर्मों का आधार दर्शन, धार्मिक कथाएँ और कर्मकांड हैं। गुरु का जीवन धार्मिक कथाओं का हिस्सा है जिसके बिना धर्म के सार को नहीं समझा जा सकता।

महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव का जीवन:

महापुरुष शंकरदेव के जीवन का श्रोत उनकी मृत्यु के बाद उनके जीवन की प्रार्थना सेवाओं के कथनों की परम्परा है। कर्मकांड उनके शिष्य महादेव द्वारा प्रारम्भ किया गया था। वैष्णव आंदोलन के परवर्ती गुरुओं ने शंकरदेव के जीवन और दर्शन के बारे में लिखा, जिसे गुरुचरित कहा जाता है। जो भी उनके अनुयायियों द्वारा अनुसरण किया

गया, अब चलन में आ चुका है और समय बीतने के साथ भारी मात्रा में जीवनपरक साहित्य का सृजन हुआ जिससे असम के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन का चित्रण हुआ। जीवनियाँ समान्यतया अनुयायियों द्वारा लिखी गईं। एक समूह के अगुवा दैत्यारी ठाकुर, भूषण द्विज, रमानन्द द्विज और बैकुंठ द्विज थे जिनहोने जीवनी को करीता पुठी के रूप में लिखा। बाद के काल में जीवनियाँ गुरु वर्णन (अनिरुद्ध दास), कथा गुरु चरित, भारद्वाजचरित, शंकरदेव चरित(बारपेटा से), सरु-स्वर्ग-खंड, बार स्वर्ग खंड(सार्वभौमा) के रूप में जानी गयी। इन जीवनीयों में, जो श्रीमंत शंकरदेव से संबन्धित तिथियों और घटनाओं की प्रामाणिकता को सिद्ध करते हैं, में महापुरुष के जीवन के परिप्रेक्ष्य में बहुत अधिक अंतर नहीं है। समान्यतया सभी जीवनियाँ शंकरदेव को विष्णु का अवतार मानती हैं। पश्चवर्ती जीवनीय कुछ सीमा तक इस परिप्रेक्ष्य में पूर्ववर्ती समूहों से भिन्न हैं कि दूसरा समूह शंकरदेव को अलौकिक शक्तियों से जोड़ता है और चमत्कारी घटनाओं का वर्णन करता है। मतभिन्नता के सूक्ष्म मुद्दे जैसे शंकरदेव बंगाल के श्री चैतन्य से मिले या नहीं, मानवीय विश्वासों व लेखक के गुरु के प्रति प्रेम का प्रकटीकरण मात्र है।

वंशावली:

शंकरदेव के पवित्र वंश संबंधी अनुसंधान व उसको लिपिबद्ध करने का कार्य असम के एक मूर्धन्य साहित्यकार व इतिहासकार डॉ. महेश्वर नियोग द्वारा किया गया है। उन्होंने परिवार की उत्पत्ति को कई पीढ़ियों के अवतारों से जोड़ा और राजा दुर्लभ नारायण (जिसने 13 वीं सदी के दौरान पश्चिम में करतोया नदी व पूर्व में बोर नदी के बीच स्थित राज्य पर शासन किया) के समय कामतापुर (वर्तमान में कूच बिहार) में पैदा हुए और बसे तथा अंततः चंडीबर के रूप में जाना गया। राजा दुर्लभनारायण सात कायस्थ परिवारों (चंडीबर सहित) और सात ब्राह्मण परिवारों को कन्नौज(गौर) से लेकर आया। बाद में वे कामरूप में बस गए जहां चांदीबार को शिरोमणि(मुखिया) भुईया बना दिया गया। भुईया भूस्वामियों को दी जाने वाली एक उपाधि है जो देश के दूसरे भागों में भी प्रचलित थी। यह वंश बारो भुईया भी कहा जाता है (आवश्यक रूप से बारह नहीं)। भूतान के भूटियाओं

के उत्पीड़न के कारण चांदीबार अपने वंश के साथ ब्रह्मपुत्र के उत्तरी किनारे की ओर चले गए (असम के वर्तमान बोडोलैंड क्षेत्र के रौता और जिंगोरी में)। चांदीबार की मृत्यु के बाद उसका पुत्र राजधर (शंकरदेव के परदादा) मुखिया बना जो बाद में अलीपुखुरी में बस गया गया। शंकरदेव का जन्म 1449 ई0 में वर्तमान नौगाव जिले में बोरदोवा के निकट अलीपुखुरी में शिरोमणि भुईया परिवार (पिता कुसुंभर और माता सत्यसंधा) में हुआ। शादी के काफी समय बाद तक कुसुंभर और सत्यसंधा के कोई संतान नहीं थी। जिंगोरी मंदिर में शिव की पूजा अर्चना के बाद शंकरदेव का जन्म हुआ। बारों भुईया असम में स्वतंत्र जमींदार हुआ करते थे। हिन्दू धर्म की वर्ण व्यवस्था के अनुसार, शंकरदेव क्षत्रिय वर्ण से संबन्धित थे, जिसे कायस्थ कहा जाता है। उनके पूर्वज वैदिक कर्मकांडों (पशु बलि सहित) में विश्वास करते थे और मूलरूप से कई देवताओं की पूजा करते थे। सात वर्ष की अल्पायु में ही माता- पिता के निधन के कारण बाल्यकाल में शंकर देव की देखभाल उनके दादा खेरसुती द्वारा की गयी।

बाल्यकाल में वे एक उन्मुक्त बच्चे थे व अपने दोस्तों के साथ अत्यधिक स्फूर्ति के साथ खेलते थे। कहा जाता है कि वह तीव्र बहाव वाली ब्रह्मपुत्र को पार कर जाते थे और पागल साँड़ों को नियंत्रित कर लेते थे। 2 वर्ष की आयु में उनकी दादी ने संस्कृत विद्वान महेंद्र कंडाली द्वारा संचालित स्कूल में भर्ती कराया। विद्यालयी जीवन के प्रारम्भ में ही उन्होंने अपना पहला छंद करतला-कमला लिखा। पूरी कविता 'ए' के अतिरिक्त अन्य किसी स्वर के इस्तेमाल के बिना लिखी गयी। किशोरावस्था के दौरान वे तोल (विद्यालय) में ही रहते थे जहां उन्होंने संस्कृत व्याकरण और भारतीय शास्त्रों का अध्ययन किया। उनकी प्रथम रचना 'हरिश्चंद्र उपाख्यान' का सृजन उनके तोल निवास के दौरान ही हुआ। ऐसा विश्वास किया जाता है कि तोल में रहने के दौरान दोपहर बाद कि सूर्य की किरणों सूर्य की किरणों से बचाने के लिए एक नागिन द्वारा ढक लिया जाता था।

शंकरदेव तोल में 1465 ईस्वी (4 वर्ष की शिक्षा)तक रहे और महत्वपूर्ण हिंदु शास्त्रों में महारत हासिल की। स्कूली शिक्षा के बाद वे भुईया वंश के प्रमुख के रूप में

अपनी जिम्मेदारियों को पूरा करने के लिए अपने समाज से जुड़े। वे अपनी प्रजा और प्रसंशकों के बीच डेकागिरी के नाम से जाने जाए थे। उन्होंने अपना निवास असम के नौगांव जिले में ही अलीपुखुरी से बोरदोवा स्थानांतरित कर लिया। 20 वर्ष की आयु में उन्होंने सत्यवती से विवाह किया और विवाह के तीन वर्ष के बाद उनको 'मनु' नाम की एक पुत्री हुई। पुत्री के जन्म के नौ महीने के बाद उनकी पत्नी का स्वर्गवास हो गया।

शंकर देव पुत्री के विवाह (12-13 वर्ष की आयु) व नए वंशज हरि के भुईया वंश के प्रमुख की गद्दी संभालने तक कुछ वर्षों के लिए (लगभग 16 वर्ष) भुईया वंश के प्रमुख बने रहे। विवाह के बाद अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों हरि व वंश से संबन्धित जिम्मेदारियां चाचा जयंत और माधव को सौंपते हुए 1481 ईस्वी में 32 वर्ष की अवस्था में अपनी तीर्थ यात्रा प्रारम्भ की। उनके मित्रा व सहयोगी रामाराम व गुरु कंडाली सहित कुल 17 लोगों द्वारा उनका साथ दिया गया। 12 वर्ष की तीर्थ यात्रा के दौरान शंकरदेव ने भक्ति आंदोलन से संबन्धित प्रमुख स्थानों की यात्रा की। उन्होंने भक्ति आंदोलन के विभिन्न केन्द्रों के दर्शन किए जिनमें उत्तर भारत के पुरी, गया, अयोध्या, सीताकुंड, वृन्दावन, मथुरा, बद्रीनाथ या बदरिकाश्रम ; पश्चिम में द्वारिका व दक्षिण के रामेश्वरम आदि स्थान शामिल थे। वे पुरी के जगन्नाथ मंदिर में लंबे समय तक रुके जहां उनकी मुलाकात देश भर के विभिन्न विद्वानों से हुई। ज्ञान व शास्त्रों के पुरी में आदान-प्रदान ने असम में नव-वैष्णव वाद की दार्शनिक नींव रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। परिवार के पुनः बोरदोवा से अलीपुखुरी स्थानांतरित हो जाने के कारण उन्हें तीर्थयात्रा से लौटने के बाद अलीपुखुरी जाना पड़ा।

फुटनोट:

1. हिन्दू शास्त्रों में बद्रीनाथ क्षेत्र को बदरी या बदरिकाश्रम कहा जाता है। यह विशेष रूप से विष्णु के द्वय रूप नर-नारायण के लिए एक पवित्र स्थान है। इसलिए महाभारत में कृष्ण ने अर्जुन से कहा है, " बहुत से नर अपने पूर्व शरीर में नारायण के साथ बदरी में वर्षों तक कठोर तप करते है।" बद्रीनाथ की औसत ऊँचाई 3100 मीटर(10170 फीट) है। बद्रीनाथ नवी शताब्दी में आदि शंकराचार्य द्वारा एक तीर्थ स्थल के रूप में पुनः स्थापित किया गया।

2. वैष्णव धर्म और असम में एकेश्वर धर्म के परिप्रेक्ष्य में अपनी कुछ रचनाओं (बोरगीत व अंकियानात) में शंकरदेव द्वारा ब्रजवाली(ब्रजबुली नहीं) का साहित्यिक भाषा के रूप में प्रयोग

किया गया। यद्यपि वैष्णव धर्म के परिप्रेक्ष्य में उड़ीसा और बंगाल में भी समान भाषा का प्रयोग किया गया, असम में भाषा अलग थी क्योंकि यह मैथिली(ब्रजभाषा नहीं) पर आधारित थी जिसमें असमी व छिटपुट हिन्दी को जोड़ा गया। सामान्य तौर पर ब्रजवाली शब्दों व मुहावरों के प्रकटीकरण का तरीका स्थानीय(असमी) था जबकि संक्रामक रूप जो की असम के लोगों द्वारा आसानी से समझा जाता था, मैथिली था लेकिन इसमें भक्ति कवियों की पसंदीदा भाषा ब्रजभाषा, का रस था। ब्रजबूली मुहावरों का विकास उड़ीसा व बंगाल में भी हुआ। लेकिन डा० सुकुमार सेन इंगित करते हैं कि असमी ब्रजबूली का विकास मिथिला के साथ सीधे जुड़ाव के कारण हुआ ('ए हिस्ट्री आफ ब्रजबूली लिटरेचर, कलकत्ता,1931) इस कृत्रिम भाषा के लिए मैथिली एक आधार थी जिसमें असमी व छिटपुट हिन्दी को जोड़ा गया। (नियोग 1980, पृष्ठ 257)(1980)। डा० नियोग "अर्ली हिस्ट्री आफ वैष्णव फेथ एण्ड मूवमेंट इन आसाम"। डेलही: मोतीलाल बनारसी दास।

बड़ों के मनाने पर शंकरदेव तीर्थयात्रा से लौटे और भुईया वंश का आंशिक नेत्रत्व(सौ परिवारों की ज़िम्मेदारी-गोमष्ठा) ग्रहण किया वह भी उन्होंने हरी को स्थानांतरित कर दिया। अपनी दादी के कहने पर उन्होंने 54 वर्ष की अवस्था में कालिंदी से विवाह किया। इस विवाह से उनके तीन पुत्र हुए। कालिंदी 142 वर्ष तक जीवित रही। उन्होंने बोरदोवा लौटकर 1498 ईस्वी में अपने पैतृक घर के स्थान पर एक प्रार्थनाघर(देवगृह) का निर्माण कराया, जहा वे लोगो से मिल सकते थे,लोगो से धार्मिक मामलों पर चर्चा व प्रार्थना कर सकते थे तथा भक्ति आंदोलन के तत्वों का प्रचार-प्रसार कर सकते थे। यह देवगृह नामघर नहीं कहा जाता था जैसा की इसे बाद में कहा गया। नामघर के विस्त्रत विवरण के लिए सत्र सेकसन देखें।

एक जरना नाम धर्म की नीव उस समय डाली गयी जब संस्कृत के प्रकांड विद्वान जगदीश मिश्रा तिरहुत (बिहार के मिथिला) से पुरी के जगन्नाथ मंदिर से होते हुए आए और बोरदोवा में शंकरदेव से मुलाकात की जहा वे श्रीधरा स्वामी की भावार्थ-दीपिका के साथ भागवत पुराण की प्रति लेकर आए और शंकरदेव को श्रीमत भागवत पुराण सुनाई। दात्यारी ठाकुर ने लिखा है कि: शंकरदेव ने जगदीश मिश्रा के वाचन को ध्यानपूर्वक सुना और माना कि भागवत गीता के समानान्तर कोई अन्य शास्त्र नहीं है और वास्तविक धर्म के नाम पर कृष्ण को ईश्वर के

रूप में व एकंठिका व जारना व सत्संग को विश्वास के अभिन्न अंग के रूप में मान्यता दी। शंकरदेव पहले ही तीर्थयात्रा के बाद भक्ति आंदोलन का हिस्सा बन चुके थे। उन्होंने 'भक्ति प्रदीप' व 'रुक्मिणी हरण' लिखी और 'कीर्तन घोष की भी रचना प्रारम्भ की। इस प्रकार शंकरदेव के नेत्रत्व में 'एक जरना नाम धर्म' फलने फूलने लगा।

पंडित जगदीश मिश्रा भागवत पुराण वाचन के एक वर्ष पश्चात स्वर्गवासी हो गए। भागवत पुराण और इसकी टीका 'भावार्थ दीपिका' के आधार पर शंकरदेव ने 'सिनायात्रा' नामक नृत्य नाट्य की रचना की और स्वयं वाद्य यंत्रों को बजाया। भागवत पुराण को मान्यता और 'सिनायात्रा' की रचना असम के लोगो के बीच वैष्णव दर्शन के प्रसार की शुरुआत थी।

इस धर्म के कुछ प्रारम्भिक लोगो में से जयनता-दलाई की पत्नी, हरीराम(बाद में तुलसीराम) नाम का एक कुष्ठ रोगी, रामाराम, उनके सहयोगी और उनके गुरु महेंद्र कंडाली थे। इसी समय अनंत कुंडाली नाम का एक संस्कृत विद्वान भी इका शिष्य बन गया।

1516 ईस्वी में कूच बिहार के राजा विश्व सिंह और कछारी राजा के बीच निरंतर संघर्ष के दबाव के कारण शंकरदेव को बोरदोवा छोड़ना पड़ा। ऐसी परिस्थियों में आध्यात्मिक विकास संभव नहीं था और इसीलिए शंकरदेव और उनके सहयोगी ब्रह्मपुत्र नदी को पार कर पहले जिंगोरी में बसे और अंत में ब्रह्मपुत्र नदी के उत्तरी किनारे पर स्थित रौता(असम का वर्तमान दरंग जिला) में बस गए। इस परिवर्तन के बाद बोरदोवा व अलीपुखुरी में भुईया वंश का प्रभुत्व समाप्त हो गया। विश्व सिंह के रौता की ओर बढ़ने के कारण वे रौता में भी लंबे समय तक नहीं रुक सके। तब शंकरदेव गंगमऊ(वर्तमान असम के सोनितपुर का बेहाली क्षेत्र) चले गए, जो अहोम राज्य का हिस्सा था। शंकरदेव गंगमऊ में 5 वर्ष तक रुके जहां उनके बड़े बेटे रामानन्द का जन्म हुआ। गंगमऊ में उन्होंने 'पत्नी प्रसाद' नाटक लिखा। गंगमऊ में ही उन्होंने एक अन्य वैष्णव अनंत कंडाली के साथ भागवत पुराण का संस्कृत से साधारण असमी भाषा में अनुवाद किया जिसे सामान्य लोग आसानी से समझ सकें। संस्कृत शास्त्रों का क्षेत्रीय भाषाओं में अनुवाद, जिससे सामान्य व्यक्ति आसानी से इन्हें समझ सके, उस काल के वैष्णव आंदोलन द्वारा अपनाए गए महत्वपूर्ण तरीकों में से एक था।

विश्व सिंह की आक्रामकता जारी रही और वह अहोम राज्य तक पहुंच गया जहा उसका सामना भुईया वंश से हुआ। भुईया अहोम वंश के लिए लड़े जहां कूच राजा को हारा दिया गया। शंकरदेव और उनके सहयोगी कूच राजा के साथ संघर्ष और भक्ति के धार्मिक उत्साह को साथ-साथ बनाए रखने की स्थिति में नहीं थे। पूरा वंश फिर से पूर्व की ओर चला गया और धुवाहाट नामक स्थान पर बस गया, जो विश्व के सबसे बड़े नदी द्वीप 'माजुली' (स्थान को बेलागुडी भी कहा जाता है) पर स्थित है। द्वीप ब्रह्मपुत्र के बीचोबीच स्थित है। जिस प्रकार भगवान कृष्ण जरासंध के हमलों से बचने के लिए समुद्र के बीच स्थित द्वारिका में बस गए, उसी प्रकार शंकरदेव ने धार्मिक प्रचार-प्रसार हेतु शांतिपूर्ण वातावरण के लिए इस स्थान को चुना। धुवाहाट वर्तमान 'आहटगुडी' के निकट स्थित एक स्थान था जो वर्ष 1913 ईस्वी में ब्रह्मपुत्र द्वारा बहा ले जया गया। धुवाहाट में शंकरदेव ने भूमि व धन के रूप में अहोम राजा से अपने वंश के लिए शाही सहायता प्राप्त की। कुछ भुईयाओं ने शाही उपाधियाँ और रोजगार प्राप्त किया। शंकरदेव के पौत्र हरी 'सैकिया' हो गए और जयंत के पौत्र और उनके चचेरे भाई 'जगतनंदा' ने रामाराय की उपाधि धारण की।

असम में नव वैष्णव वाद आंदोलन के लिए अन्य महत्वपूर्ण घटना धुवाहाट नामक स्थान पर घटी जहा शंकरदेव अपने आध्यात्मिक उत्तराधिकारी माधवदेव से मिले। महादेव देवी-देवताओं के सामने बलि चढ़ाने सहित कर्म-काण्ड में विश्वास रखते थे (जिसे जफ़ता कहा जाता था)। वे देवी के सामने बकरी की बलि चढ़ाने के दौरान अपने साले रामदास से मिले और रामदास, जो कि हाल में ही वैष्णव धर्म में धर्मांतरित हुए थे, के साथ धार्मिक तर्क-वितर्क हुआ। रामदास पूर्व में गयापणी के नाम से जाना जाता था जिसने महादेव और शंकरदेव के सामने महादेव की बहन से विवाह किया। रामदास शंकरदेव के पास गया और लंबे वाद-विवाद के बाद एक-जरना की शक्ति व क्षमता को माना। यह घटना विष्णु के अवतार के साथ परमात्मा के मिलन पर ज़ोर देने के लिए 'मोनी-कंचन योग' के नाम से जानी जाती है। महादेव इस विश्वास की मजबूत स्थापना और वैष्णव वाद के प्रसार के पीछे मुख्य ताकत थे। शंकरदेव धुवाहाट में 16 वर्षों तक रहे जहां कई महत्वपूर्ण अनुयायियों ने भक्ति आंदोलन के प्रसार में उनका साथ दिया।

उन्होंने इस काल के दौरान कीर्तन घोष और बोर गीत भी लिखा। शाही संरक्षण में उनके सान्निध्य में लोगो का आध्यात्मिक जीवन उत्कृष्ट होता चला गया जब तक कि अहोम राजा से उनके संबंध तनावपूर्ण नहीं हो गए।

एक-जरना नाम धर्म की लोकप्रियता और वैदिक कर्मकांडों और जनजातीय जीवन पद्धति के रूपान्तरण ने ब्राह्मण पुजारियों के कान खड़े कर दिये जिन्होंने क्रोध व शत्रुतापूर्वक प्रतिक्रिया दी। शंकरदेव ने अपने ब्राह्मण विरोधियों से अपने एक संबंधी बुद्ध खान के घर पर मिलकर व जगन्नाथ की लकड़ी की मूर्ति की स्थापना की बात कर शत्रुता को समाप्त करने का प्रयास किया, जिनहे अपने पद पर मदन मोहन कहा जाता था। लेकिन पुजारी संतुष्ट नहीं हुए और अहोम राजा सुहंगमुहंग(1497-1539) से शिकायत की जिसने शंकरदेव को उनके साथ तर्क-वितर्क के लिए अपने दरबार में बुलाया। शंकरदेव राजा को यह समझाने में सफल हुए की वे धार्मिक विद्रोही या व्यवस्था के लिए चुनौती नहीं हैं। उनके विरुद्ध आरोप छोड़ दिये गए। शत्रुता हमेशा के लिए समाप्त हो गयी

यद्यपि भुईया की असम में स्थापित स्थिति थी, संबंध धीरे-धीरे खराब होने लगे। उसी समय कूच राजा के साथ संबंध मधुर होने लगे। 1540 ईस्वी में कुछ समय के लिए सुकलेंगमूंग (1539-1552) के शासनकाल के दौरान एक शाही अधिकारी ने हाथी पकड़ने के अभियान में क्षेत्र का दौरा किया। हरि मौजूद नहीं था और फिर हाथी भुईया द्वारा बनाए गए अवरोधक से बच निकला। अधिकारी ने कर्तव्य में इस लापरवाही पर कड़ा प्रतिरोध जताया और हरि तथा महादेव को गिरफ्तार कर लिया। बाद में हरि को वर्तमान शिवसागर के निकट राज्य की राजधानी, गढ़ गाँव में फासी दे दी गयी और महादेव को छोड़ दिया गया क्योंकि वह शादीशुदा नहीं था। महादेव एक वर्ष बाद धुवाहाट लौटे। महादेव द्वारा घटना की जानकारी देने पर, धुवाहाट में प्रत्येक व्यक्ति को हरि की मृत्यु की बात पता चली। उनके दामाद का नुकसान, आध्यात्मिक आंदोलन के प्रति अहोम राजा की असहनशीलता का प्रतीक थी। शंकरदेव ने अपने अनुयायियों के साथ धुवाहाट छोड़ दिया और कूच राज्य चले गए। कूच का ब्रह्मपुत्र के उत्तरी किनारे से अहोम की ओर बढ़ना , विस्थापन के लिए लाभकारी था। कूच सेना ने माजुली के निकट स्थित नारायणपुर में अपना पड़ाव डाला और शंकरदेव की उत्तर की ओर नदी पार करने में सहायता की। पराक्रमी राजा से टकराव टालने के लिए विस्थापन आवश्यक

था अन्यथा यह आध्यात्मिक विकास के लिए विनाशकारी होता। शंकरदेव पूर्व में ही राजा नरनारायण के आध्यात्मिक झुकाव के बारे में सुन चुके थे जिसने उन्हें शांति के आर लिए आकर्षित किया। वह पहले ही 95 वर्ष के हो चुके थे और माजुली में संघर्ष के बजाय कामरूप में भक्ति के प्रसार का निर्णय लिया। शंकरदेव धुवाहाट छोड़ते समय जगन्नाथ की मूर्ति पेड़ पर लटकती छोड़ गए जिसे वर्षों पश्चात उनके शिष्य बंशीगोपाल देव ने लाकर माजुली के देवरापार सत्र में स्थापित किया। विश्व सिंह जो भुईया के प्रति शत्रुतापूर्ण भावना रखता था, की मृत्यु और नर नारायण (1540) के उदय के पश्चात, कूच-भुईया संबंध कुछ और मधुर हो गए। शंकरदेव और उनके अनुयायी 1540 ईस्वी के पश्च भाग में कूच राज्य के कपालबाड़ी पहुँचे और वहीं बस गए। उस समय वर्तमान के उत्तर बंगाल के नौगाव जिले में स्थित कोलंग नदी के पश्चिम का सम्पूर्ण भाग कूच राज्य का हिस्सा था। लेकिन कपालबाड़ी का पानी अत्यधिक लवणीय था। महादेव की माँ सहित बहुत से सदस्य स्वर्गवासी हो गए। शंकरदेव और उनका समूह 1541 ईस्वी में सोनपाड़ा की ओर चला गया। सोनपाड़ा (कामरूप में बरपेटा के निकट) ने शंकरदेव ने भवनन्दा को जरना में शामिल किया। वह एक धनी व्यापारी था और कामरूप के अतिरिक्त गारो और भूटान की पहाड़ियों में अपने व्यवसायिक हिट रखता था। शंकरदेव ने उसका नाम नारायण रखा जो नारायण ठाकुर या ठाकुर अता के नाम से जाना जाता था। नारायण ठाकुर बाद में बरपेटा के निकट जनिया में बस गया और कृषि को अपना लिया। शंकरदेव और उनके आदमियों को उसकी ओर से महत्वपूर्ण सहायता मिली।

शंकरदेव सोनपाड़ा में केवल 6 माह या 1 वर्ष तक ही रुके तत्पश्चात वे नजदीक के ही क्षेत्र कुमारकुपि या कुमारपाड़ा चले गए जहाँ एक वर्ष तक रुककर 97 वर्ष की आयु में 1546 ईस्वी में पतबौसी चले गए। सभी स्थान जहाँ काही भी वे रुके धार्मिक प्रवचन(बाद में सत्र कहा गया) की गद्दी बन गए जहाँ अपने शिष्यों में से एक को जारन नाम धर्म के नित्य प्रतिदिन के कर्मकांड जारी रखने के लिए छोड़ा। शंकरदेव कूच राज्य के पतबौसी(बरपेटा के निकट) में बस गए और कारीहाटी व नामघर की अन्य महत्वपूर्ण संरचनाओं के साथ साथ एक कीर्तनघर (प्रार्थनाघर) का निर्माण किया। कुछ लोग जिनहे उन्होंने यहा पर दीक्षा दी है वे हैं- चक्रपाणि द्विज, और सार्वभौम भट्टाचार्य,ब्राह्मण;गोविन,एक गारो; जयराम, एक भूटिया;मघई, एक जयंतिया; जैतराम,एक तपस्वी; और मुरारी,एक कूच। दामोदरदेव नाम का एक ब्राह्मण भी

शंकरदेव द्वारा शामिल किया गया। दामोदर देव को शंकरदेव द्वारा ब्राह्मण शिष्यों को शामिल करने का कार्य सौंपा गया। दामोदरदेव के लिए पतबौसी में ही एक सत्र का निर्माण किया गया। दामोदरदेव से मिलन असम के नववैष्णववाद आंदोलन के लिए एक महत्वपूर्ण घटना थी। बाद में दामोदरदेव ब्रह्मसंगति का संस्थापक बन गया जो भगवान कृष्ण की मूर्ति पूजा में विश्वास रखता था। असमी विद्वान लक्ष्मीकांत बेजबरुवा मानते थे की शंकरदेव ने भगवान कृष्ण की मूर्ति पूजा से संबन्धित किसी सत्र की कभी स्थापना नहीं की। बाद के वर्षों में कुछ परिवर्तन हुए जब उनके प्रमुख शिष्यों में आपस में मनमुटाव हो गया। उन्होंने हमेशा ब्राह्मणों का सम्मान किया और हमेशा उन्हें उच्च स्तर पर रखा और कभी भी जारन में शामिल करने और दीक्षा देने से माना नहीं किया। यह विशेष मुद्दा नव वैष्णववाद आंदोलन के अंतर्गत असमी समाज के विकास का बहुत बड़ा कारक बन गया।

पतबौसी से शंकरदेव 1550 ईस्वी में 117 शिष्यों के बड़े दल के साथ द्वितीय तीर्थयात्रा के लिए निकाल पड़े जिसमें महादेव, रामराय, रामाराम, ठाकुर अता और अन्य शामिल थे। ठाकुर अता को एक दिन की यात्रा के पश्चात वापस आना पड़ा। महादेव को रसद की सम्पूर्ण जिम्मेदारी उठानी पड़ी। इस तीर्थ यात्रा के दौरान शंकरदेव ने कबीर मठ और जगन्नाथपुरी के दर्शन किए। इस यात्रा, जो ठीक प्रकार से लिपिबद्ध नहीं की गयी , में शंकरदेव की चैतन्य महाप्रभु से मुलाकात पर जीवनीकारों के बीच मतभेद हैं। वे वृन्दावन का भी दर्शन करना चाहते थे लेकिन उनकी पत्नी कालिंदी एक बार विरण्डवन जाने पर उनकी वापसी को लेकर आशंकित थी। शंकरदेव पहले ही 97 वर्ष के थे और महादेव पर निर्भर थे। इसलिए वे वृन्दावन नहीं गए। शंकरदेव और उनका दल 6 माह के अंदर पतबौसी लौट आया। उनकी तीर्थ यात्रा के पूर्व ही कूच सेना के सेनापति और कूच राजा नारायण के भाई शिलाराय (शुक्लोधवाज) ने शंकरदेव के चचेरे भाई रामराय की पुत्री भुबनेश्वरी से विवाह कर लिया था।

उनके तीर्थ यात्रा से लौटने के बाद रामराय और अन्य शिष्य पुनः गया, काशी और वृन्दावन के दर्शन करना चाहते थे। शंकरदेव ने कुछ नहीं कहा लेकिन एक बोरगीत “ नहीं नहीं रामाया बिने टापा कारक कोई “ की रचना की। बोरगीत के बारे में जानने के बाद रामराय ने अपना

विचार त्याग दिया और महसूस किया कि तीर्थ यात्रा एक कठिन कार्य है; एक जारन भक्ति ही आंतरिक शांति का वास्तविक मार्ग है।

पटबौसी में ठहराव लगभग 18 वर्ष का था जहां उनके आध्यात्मिक कार्य का बड़ा भाग पूर्ण किया गया। इस अवधि के दौरान इन्होंने 17 शास्त्रों का स्थानीयकरण और संक्षेपण किया और कीर्तनघोष भी पूर्ण किया। उन्होंने भागवतपुराण के 5 भागों का असमी कविता के रूप में अनुवाद भी किया। 'अनादि पाटन'; निमी नवसिद्ध; 'संवाद'; और बालिसलाम ; की रचना हुई।

कूच राज्य में भी शंकरदेव को पुजारी वर्ग की चुनौती का सामना करना पड़ा क्योंकि एक-जारन नाम ने मूर्ति पूजा की आवश्यकता व जटिल वैदिक कर्मकांडों को मानने से इंकार कर दिया जो की आय , समाज में असमानता और ब्राह्मण वर्ग द्वारा गरीब अशिक्षित लोगों के शोषण का श्रोत थे। बार बार ऐसी शिकायतें सुनकर कि शंकरदेव नए धर्म के प्रसार द्वारा लोगों के मन को दूषित कर रहे हैं, द्वितीय तीर्थ यात्रा के तुरंत बाद कूच राजा नरनारायण ने शनारुदेव को गिरफ्तार करने का आदेश दिया। शिलाराय ने अपने आठ सैनिकों को बिना रुके यात्रा कर पटबौसी पहुँचने के आदेश के साथ भेजा। उन्हें राजा के आदमियों के पहुँचने के पूर्व ही शंकरदेव के युवराज के आदेश पर गिरफ्तार करने के निर्देश दिये गए। राजा के आदमी शंकरदेव को गिरफ्तार नहीं कर सके क्योंकि वो पहले ही युवराज शिलाराय की गिरफ्त में थे। शंकर देव को सम्मान पूर्वक राजकुमार के गार्डेन पैलेस सुरक्षित लाया गया। तब शिलाराय ने शंकरदेव को आलोचना से पूर्व अपनी बात रखने देने हेतु राजा से आग्रह किया। राजा ऐसा करने को तैयार हो गया। नरनारायण के दरबार में जैसे ही उसने सिंहासन की ओर कदम बढ़ाए, शंकरदेव ने कृष्ण की स्तुति में संस्कृत टोटका मंत्र जिसे अब तोताया कहा जाता है , गाया 'मधु दानव दारना देव वरम ' ओर जैसे ही वह बढ़ा , उन्होंने भोर गीत 'नारायण कहे भक्ति करूँ तेरा ' गाया।

हिन्दू धर्म पर खुले वाद विवाद में शंकरदेव ने पुजारियों को हरा दिया। नरनारायण ने शंकरदेव के ज्ञान , संत की आभा और उदारता से काफी प्रभावित हुआ और उन्हें बारपेटा क्षेत्र का 'गोमाष्टा नियुक्त किया। उन्हें कूच बिहार के निकट भेलाडंगा में सत्र की स्थापना के लिए

भूमि आवंटित की गयी जिसे बाद में मधुपुर सत्र के नाम से जाना गया। नरनारायण ने शंकरदेव को आध्यात्मिक जीवन शैली और शिक्षा का मुक्त प्रसार करने के लिए इजाजत देने हेतु घोषणापत्र जारी किया। यहाँ तक की राजा ने जारन को ग्रहण करने और शंकरदेव का शिष्य बनने की इच्छा व्यक्त की लेकिन उन्होंने उसे शिष्य बनाने से इस आधार पर मना कर दिया कि राजा के लिए धार्मिक व नैतिक मूल्यों का पालन करना संभव नहीं होगा।

यह महान योद्धा शिलाराय ही था जिसने शंकरदेव को न केवल निश्चित मृत्यु से बचाया बल्कि यह उसके शाही संरक्षण का ही परिणाम था कि शंकरदेव असम में एक जारन धर्म स्थापित करने व सांस्कृतिक पुनर्जागरण लाने में सफल रहे। शिलाराय ने शंकरदेव व उनके अनुयायियों के पतबौसी में ठहरने के लिए एक बगीचों का घर बनाया। शंकरदेव कूच बिहार और पतबौसी के बीच बस गए। अपने कूच बिहार प्रवास के दौरान शंकरदेव प्रायः राजकुमार शिलाराय को वृन्दावन के युवा कृष्ण के बाल्यकाल के मनोरंजन से परिपूर्ण दिनों का वर्णन सुनाया करते थे। राजकुमार मंत्रमुग्ध था और भगवान के पिछले दिनों का गहराई से अनुभव करने की इच्छा जताई इसलिए शंकरदेव चित्रात्मक रूप में कपड़ों पर कथा छपवाने के लिए तैयार हो गए।

उन्होंने वृन्दावन में व्यतीत किए गए श्रीकृष्ण के जीवन के आरंभिक वर्षों को चालीस गज लंबे वस्त्र पर चित्रित करने के लिए बरपेटा के निकट तांतिकुची के बुनकरों को लगाया। शंकरदेव ने चित्रित करने के लिए डिजाइन , अलग अलग रंग व धागे उपलब्ध कराये और स्वयं बुनाई का पर्यवेक्षण भी किया। इसे पूरा होने में लगभग एक वर्ष लगा और विषयानुरूप ही इसका नाम भी वृन्दावनी वस्त्र रखा गया। इसे शिलाराय व नरनारायण को दिखाया गया, दोनों ही इसके चित्रण से अभिभूत हुए। शंकरदेव ने कूच बिहार से एक मुसलमान दर्जी को भी लिया, जो उनके साथ पतबौसी भी आया।

राजा ने अपने दरबार में शंकरदेव और पुजारियों के बीच धार्मिक प्रवचन व चर्चा कारवाई एक बार राजा नरनारायण ने अपने दरबारी कवियों से भगवत पुराण के समस्त बारह अध्यायों का संतुष्ट रूपण करने को कहा।जब सारे पंडितों ने इतने अल्प समय में कर पाने में असमर्थता जताई तो शंकरदेव ने इसे चुनौती के रूप में स्वीकार किया।और सिर्फ एक रात में ही इसे पूर्ण किया।जिसे गुणमाला पुथी के नाम से जाना जाता है जो की भागवत का संक्षिप्त रूप है।

भागवत पुराण के 12 अध्याओं के मूल तत्वों को एक छोटी पुस्तिका में संकलीत करने के बाद उन्होंने इसे लकड़ी के छोटे बक्से में रखा। तब इसके ऊपर उन्होंने ब्रत के अंदर एक मुरझाए हुए हाथी हंगुल हेतल (पीला और लाल) को पेंट किया। उन्होंने इसे 'भुरुकात हाथी' कहा जिसका तात्पर्य है ऐसा हाथी नींबू के बर्तन में निचोड़ दिया गया हो। यह शास्त्र गुणमाला था। मूर्तियों की बजाय यह पुथी (असमी भाषा में धार्मिक पुस्तकों को सम्मान के साथ पुथी कहा जाता है) प्रार्थनाघर , नामघर, के गर्भग्रह (मुख्य व पुराना)में रखा गया है और चैतन्य के रूप में पूजा की जाती है। कुछ सत्रों में भगवान कृष्ण की मूर्ति बाएँ हाथ की तरफ राखी जाती है।

शंकरदेव ने राजा नरनारायन की प्रशंसा में तीन आभार लेख (असमी भाषा में भाटिमा कहा जाता है) लिखे। शंकरदेव का नरनारायन व शिलाराय के साथ जुड़ना असमी पुनर्जागरण का स्वर्ण युग माना जाता है। उनके शाही संरक्षण में शंकरदेव व महादेव देव ने स्वतन्त्रता पूर्वक एक जारन धर्म का प्रचार किया। शंकरदेव 1568 ईस्वी में अपने महाप्रयाण तक 20 वर्ष से अधिक समय तक इस राज्य में रुके।

उन्होंने महादेव और ठाकुर अता के साथ व्यवस्था बनाई और पतबौसी में उन्हें विभिन्न निर्देश दिये और स्थान को अंतिम बार छोड़ दिया। उन्होंने मधुपुर सत्र में अपना घर स्थापित किया। 1568 ईस्वी में भेलाङ्गा में अपने अंतिम पड़ाव में मानवता की सेवा को समर्पित सर्वाधिक घटना पूर्ण जीवन व्यतीत करने के बाद 120 वर्ष की उल्लेखनीय आयु में महापुरुष ने अपनी अंतिम सांस ली।

शंकरदेव की शिक्षाओं के प्रमुख बिन्दु:

लोकतन्त्र के बीज, विशेष रूप से असम के धार्मिक, सामाजिक व सांस्कृतिक क्षेत्र में, पहली बार शंकरदेव द्वारा डाले गए। नव वैष्णववाद की शुद्ध स्वास्थ्यवर्धक वायु के साथ शंकरदेव ने लोगों के मस्तिष्क को शुद्ध किया और व्यक्तिगत जीवन को आत्मसम्मानपूर्ण व अर्थपूर्ण बनाया। शंकरदेव ने असम को एक धार्मिक चेहरा और एक प्रेमपूर्ण उदारवादी धर्म दिया, ऐसा धर्म जो कर्मकांडों, समारोहों और अंधविश्वासों, जो उस समय का लक्षण था, के भर से मुक्त था। यह

तथ्य रेखांकित करते हुए कि धर्म व नैतिकता परस्पर जुड़े हुए हैं, शंकरदेव के लेखों ने धर्म के नैतिक पक्ष पर ज़ोर दिया। पुराणों और धर्म ग्रंथों से उपयुक्त उदाहरण लेकर उन्होंने सत्य, दया या कृपा, दान अहिंसा, क्षमा, अनसूया (ईर्ष्या की अनुपस्थिति), धृति (धैर्य), श्रद्धा और इंद्रियों पर नियंत्रण जैसे पुण्य कार्यों की व्याख्या की। उनकी शिक्षाओं के अनुसार बातें, दुख, विनाश और गैर अध्यात्मिकता का प्रसार करती हैं वे निम्नलिखित हैं:- काम (कामुक प्रसन्नता), क्रोध, लोभ, मोह, मन, मत्सर्या या असूया (ईर्ष्या)। इन नैतिक पुण्य कार्यों ने न केवल अच्छे लोगों का व्यवहार (सदाचार) निर्धारित किया बल्कि सामाजिक सौहार्द, मित्रता व मानव व्यवहार में नई खुशबू को जोड़ा।

शंकरदेव ने स्वयं को केवल भक्ति मार्ग के उपदेशों व नैतिक मूल्यों को कायम रखने तक सीमित नहीं रखा बल्कि अंधविश्वासों, भ्रष्टाचार, अज्ञानता, छुआछूत, इंसान-इंसान में असमानता और दूसरी सामाजिक बुराइयों को दूर कर असम में नयी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना की। यही नहीं पुनर्जनित असमी साहित्य, नाटक, कविता, गीत और संगीत दिया जिसने एक अलग विचारधारा का रूप ले लिया और असमी समुदाय को एकता के सूत्र में पिरोया।

गुरु ने छुआछूत के उन्मूलन और सभी जातियों और समुदायों के लिए समान अधिकारों की स्थापना का प्रयास किया। गांधी जी के जीवन पर्यंत प्रयासों से स्वतंत्र भारत के संविधान में जो बातें शामिल की गयी हैं, असम में 500 वर्ष पूर्व ही महापुरुष शंकरदेव ने प्रचलित कर दी थी। उन्होंने पूर्व के सामाजिक रूप से दबे कुचले समुदायों को भक्त व महंत बनाकर उच्च जातियों के स्तर तक ऊंचा उठाया। अपने उपयुक्त संदर्भों व अभेद्य तर्कों के आधार पर वे ब्राह्मणों व उच्च वर्गों द्वारा अपने उच्च सिद्धांतों को मान्यता व स्वीकृति दिलाने में सफल रहे, जो कि प्रारम्भ में इन सुधारों के विरोधी थे और इस प्रकार एक उदारवादी, लोकतान्त्रिक सामाजिक व्यवस्था की स्थापना की।

शंकरदेव ने मूलरूप से अपने भक्ति आंदोलन के माध्यम से यह संदेश दिया कि ईश्वर की प्राप्ति केवल कुछ लोगों का एकाधिकार नहीं है बल्कि यह उन सभी की पहुँच में है जो इसके लिए प्रयास करते हैं। शंकरदेव द्वारा असम को दी गयी सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्था, नामघर आज भी असम में लोकतान्त्रिक मूल्यों पर चल रही है, में सभी ग्रामीणों की

आवाज है और सभी का प्रबंधन में हिस्सा है। इसके दरवाजे न सिर्फ सभी के लिए खुले हैं बल्कि यह सभी ग्रामीणों को, चाहे वे किसी भी जाति या प्रजाति के हों, इसकी सांस्कृतिक गतिविधियों में भाग लेने की छूट है जो जीवन को शानदार व सुंदर बनाता है। बिना अन्य बातों का संज्ञान लिए सभी लोगों की व्यक्तिगत क्षमता व प्रतिभा को मान्यता देना नामघर की सामान्य प्रक्रिया है। एक व्यक्ति को उसके सामाजिक स्तर के कारण नहीं बल्कि संबन्धित क्षेत्र में उपलब्धियों के कारण अंकिया नाटक में सूत्रधार अथवा सामूहिक संगीत में ज्ञान व बयान में वरीयता दी जाती है।

शास्त्रीय शिक्षा की सीमाओं को तोड़ना और इसके साहित्य को अशिक्षित लोगों तक पहुंचाना, शंकरदेव का लोकतन्त्र की दिशा में दूरगामी योगदान था। संस्कृत भाषा के अच्छे व शानदार सारगर्भित विचार का आख्यानो, काव्य और अंकिया नाटकों के माध्यम से अनावरण किया गया जिससे आम आदमी इनकी पहुँच में आ सके। आधुनिक सिनेमा व दृश्य-श्रव्य अकर्षणों के बावजूद इन सांस्कृतिक मनोरंजनों का प्रभाव आज भी ग्रामीण लोगों के मस्तिष्क में विद्यमान है। यद्यपि अपने अधिकांश लेखों में शंकरदेव ने वैदिक भाषा के बजाय आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया, लेकिन इन लेखों में बोलचाल के रूखेपन का प्रभाव नहीं है। संचार के सरल माध्यम के साथ भारतीय विचार और साहित्य में लोगों को अपना सर्वोत्तम प्रदान किया। उनके बोरगीत आज भी शास्त्रीय धुन में अशिक्षित लोगों द्वारा गाये जाते हैं व ग्रामीणों द्वारा अंकिया-भावना नृत्य परंपरागत नाट्यशास्त्र शैली में प्रस्तुत किया जाता है। इसीलिए लक्ष्मीकांत बेजबरुवा ने कहा, "अशिक्षित असमी लोग अज्ञानी नहीं हैं।"

शंकरदेव ग्रामीणों को नामघर में इकट्ठा करते थे तथा उन्हें निरर्थक गपशप या अल्पकालिक बातचीत का कोई मौका नहीं देते थे। अच्छे संगीत या दार्शनिक तथा धार्मिक चर्चाओं में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करते थे। निःसन्देह इन सभी क्रियाओं ने सामाजिक मूल्यों व संस्कृति के स्तर को ऊंचा उठाया व सामान्य मस्तिष्क के बौद्धिक तथा कल्पनाशील क्षितिज को वृहत कर दिया।

एक देश के रूप में भारत का विचार पहले ही हिन्दू धर्मशास्त्रों की तरह आम लोगों के अध्यत्मिक मस्तिष्क में विद्यमान था। शंकरदेव चाहते थे कि लोग इस पवित्र भारतवर्ष देश में जन्म लेने पर गर्व की अनुभूति करें क्योंकि यह देश मनुष्य के नैतिक व आध्यात्मिक क्षमताओं

के विकास के अपार अवसर उपलब्ध कराता है। उन्होंने बार-बार भारत के गौरवशाली और आध्यात्मिक अनुभवों पर ज़ोर दिया। अपने कई छंदों में उन्होंने इस प्राचीन राष्ट्र भारतवर्ष की महान विरासत के बारे में बात की।

शंकरदेव ने कामरूप से कन्याकुमारी तक यात्रा कर असमी लोगों के भौगोलिक दायरे को बढ़ाया और भाषाई,सांस्कृतिक व धार्मिक आधार पर असम को शेष भारत के साथ जोड़ा। अपने मंत्रों व नाटकों में उन्होंने ब्रजवाली का प्रयोग किया जो राष्ट्रीय भाषा के रूप में पूरे उत्तर भारत में समझी जाती थी;सत्र व नामघर काफी सीमा तक दक्षिण के मठों की व्यस्थाओं पर आधारित थे। उनकी कुछ साहित्यिक व कलात्मक अभिव्यक्तियाँ अलवार संतों,कबीर विद्यापति और भारत के अन्य संत कवियों की सलाह पर आधारित थीं। इस प्रकार शंकरदेव ने संकीर्णता व अलगाव को तोड़ा और भारतीय भावनाओ तथा भारत की एकता का मार्ग प्रशस्त किया।

शंकरदेव द्वारा अपनाए गए संचार के माध्यम:-

शंकरदेव द्वारा ग्रहण किए गए सम्प्रेषण के माध्यम को निम्न प्रकार से आकलित किया जा सकता है.अंकियानात या भावना जो कि महाभारत व रामायण की कहानी पर आधारित है।गीत बोरगीत, भाटिया व तोते से निर्मित हैं। कीर्तन प्रार्थनाओं का संयोजन है उनका साथ संगीत, वाद्ययंत्रों, व हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत द्वारा दिया जाता है।

पुथी या आध्यात्मिक साहित्य संस्कृत शास्त्रों पर आधारित है।

डा० महेश नियोग सहित वर्तमान के अधिकांश विद्वान पुथी के निर्माण को असमी साहित्य का हिस्सा मानते हैं। निःसन्देह वैष्णव धर्म के लेख असमी साहित्य के विकास व वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका रखते हैं। लेकिन इन रचनाओं का उद्देश्य साहित्यिक नहीं था। इका मूल भाव आध्यात्मिक शिक्षा है। समान्यतया इन रचनाओं की साहित्यिक खूबसूरती की प्रशंसा व विश्लेषण करते समय आध्यात्मिक भाव को छोड़ दिया जाता है। इसलिए कलात्मक या

साहित्यिक भाग के बजाय उनका अध्ययन व टिप्पणी आध्यात्मिक कारक के रूप में करना ज्यादा वांछित है।

शंकरदेव ने अपना भागवत पुराण का प्रतिपादन पूर्ण किया। शंकरदेव ने कीर्तन घोष की रचना की फिर अंतिम भाग (उत्तर काण्ड) का अनुवाद किया और महादेव को पहले भाग का अनुवाद करने हेतु निर्देशित किया जो महादेव कंडाली द्वारा छोड़ दिये गए थे। उन्होंने 6 नाटक लिखे; सिना यात्रा (उपलब्ध नहीं), रुक्मिणी हरण, पारिजात हरण, केलिगोपाल, कलिदमन और राम विजय। पतबौसी में लिखा गया एक दूसरा नाटक 'कंस वध' अप्राप्त है। पतबौसी में उन्होंने बोरगीत, जिनकी संख्या 240 है, को कमला ज्ञान को दिया। लेकिन दुर्भाग्यवश, ज्ञान का घर धराशायी हो जाने के कारण अधिकांश बोरगीत खो गए थे। पुथी की रचना और दूसरे माध्यम उनके जीवन के भिन्न-भिन्न समय कालों में भिन्न-भिन्न थे। अधिकांश पुथी भागवत पुराण के आधार पर लिखे गए थे।

काव्य:-

हरिश्चंद्र-उपाख्यान (मार्कण्डेय पुराण)

रुक्मिणी-हरण-काव्य (भागवत तत्वों से मिश्रित, सृद्धा स्वामी की टीका से प्रभावित नहीं)

अजमिल-उपाख्यान

अमृत-मंथन

बलि-चलन

कामाज्य या रसकृदा

गोपी-उद्धव-संवाद

कुरुक्षेत्र यात्रा

कृष्ण-प्रयाण-पांडव-निर्याण

कीर्तन घोष

कथाओं पर आधारित कार्य (भक्ति सिद्धान्त पर कार्य)

भक्ति-प्रदीप(गरुण-पुराण)

अनादि पतना

निमी-नवसिद्ध-संबाद

गुणमाला

भक्ति रत्नाकर

अनुवाद:

भागवत बुक VI (आजमाइला-उपाख्यान भाग), बुक VIII (अमृत-मंथन भाग), बुक I,बुक II, बुक III, बुक VII (बलि चलन भाग), बुक x (आदि भाग), बुक XI, बुक XII

उत्तराखंड रामायण पूरक से महादेव कंडाली की सप्त कांड रामायण

गीत:

बोरगीत,240 रचित लेकिन अब 34 मौजूद

तोताया

भाटिमा: तीन प्रकार देव भाटिमा,नाट भाटिमा और राज भाटिमा

6 अंकिया भावना में फैले 145 गीत हैं। अंकिया नात में कुछ गीत बिना शास्त्रीय राग व ताल के हैं। जिन्हे कपाया या पयारा कहा जाता है।

नाटक (अंकिया नात)

(विप्र)-पत्नी-प्रसाद (अंकिया नात)

कलि-दमन

केलि-गोपाल

रुक्मिणी-हरण

पारिजात-हरण

राम-विजय

तीन नात अप्राप्त हैं: सिना यात्रा, जन्म-यात्रा, कंस-बध

दृश्य कला:

सत्रीय नृत्य शंकरदेव द्वारा चलाया गया।

उनकी भाषा स्पष्ट है, उनके छंद पिये हुए हैं और उन्होंने जो कुछ भी लिखा उसमें भक्ति को मिलाया। उनकी सर्वोत्कृष्ट कृति कीर्तनघोष है जो इतना लोकप्रिय है कि आज भी असम के बहुत से घरों में मिल जाता है। कृष्ण के महिमामंडन के कथात्मक छंद हैं जो सामूहिक गायन के लिए हैं। यह उत्तम भक्ति काव्य है जो जीवंत और सरल भाषा में लिखा गया है। यह युवाओं को काव्यात्मक खूबसूरती से रूबरू कराता है और बड़े लोग इससे धार्मिक निर्देश व ज्ञान अर्जित करते हैं।

उनका भागवत का अनुवाद वास्तव में एक नव-सृजन (ट्रांस-सृजन) है क्योंकि उन्होंने केवल शब्दों का अनुवाद नहीं किया बल्कि मुहावरों व मुखड़ों का भी किया। उन्होंने मूल पाठ को स्थानीय भूमि व लोगों के अनुसार ढाला। इससे अधिक महत्वपूर्ण यह है कि यह भक्ति के उद्देश्यों के लिए था। जहां जरूरी था, मूल भाग छोड़ दिये गए या विस्तारित किए गए।

शंकरदेव एकल नाटक अंकिया नात के मूल स्रोत थे। उनकी सिना यात्रा विश्व के पहले खुले थियेटर प्रदर्शनों में से एक मानी जाती है। नवीनता, जैसे मंच पर सूत्रधार की उपस्थिति, मुखौटे का प्रयोग आदि दूसरे प्रमुख नाट्य लेखनों में प्रयोग किए गए।

शंकरदेवकेनववैष्णववादकेदार्शनिकलक्षण:-

शंकरदेव का भक्ति आंदोलन श्रीमद्भागवत गीता के एक जारन, श्री भागवतगीता के भक्ति के नौ रूप और सत्संग तथा पद्मपुराण के नाम पर आधारित है। मद्भागवतपुराण से ब्रह्मसूत्र के रूप में बद्रनारायण द्वारा प्रसारित वेदान्त स्कूल से दार्शनिक अनुकूलन है। व्यास के वेदांता स्कूल ने अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैता-अद्वैत तथा शुद्धाद्वैत पर आधारित कई वैष्णव पंथों का मार्ग प्रशस्त किया। आधुनिक समय में माया पर आधारित अद्वैत के माध्यम से वेदान्त विचारधारा की स्थापना शंकराचार्य (788-820 ईस्वी) द्वारा की गयी। वल्लभचार्य ने शुद्धाद्वैत की शुरुआत की यद्यपि वह शंकरदेव से उम्र में छोटे थे। 12वीं शताब्दी में रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैतवाद की शुरुआत की। शंकरदेव शंकराचार्य के प्रचार-प्रसार से प्रभावित नहीं थे यद्यपि उन्होंने शंकराचार्य की शिक्षाओं से श्लोकों को उद्धरित किया। शंकराचार्य के ब्रह्म ज्ञान को निर्वाण के एक मात्र मापदंड के रूप में कभी भी प्रोत्साहित नहीं किया।

बंगाल के चैतन्य महाप्रभु की तरह श्रीमंत शंकरदेव ने भी कभी वेदान्त विचारधारा पर किसी विशेष टीका का अनुसरण करने की आवश्यकता महसूस नहीं की। उनके लिए श्रीमद् भगवतगीता स्वयं में वेदान्त की एक महत्वपूर्ण टीका है। आज भी असम के लोग वेदान्त दर्शन पर किसी अन्य भाष्य/टीका की अव्यश्यकता महसूस नहीं करते हैं। श्रीमंत शंकरदेव द्वारा चलाया गया धर्म असमी लोगों की आध्यात्मिक शांति और सामाजिक विकास के लिए था।

असम में वैष्णव धर्म के शास्त्र (पुथी) आम लोगों के समझने के लिए तैयार किए गए थे जहां दर्शन पर किसी विशेष चर्चा पर ज़ोर नहीं दिया जाता था। वेदान्त दर्शन ने अत्यधिक वाद-विवाद व चर्चा को जन्म दिया। इसलिए शंकरदेव ने विवादों को टालने के लिए उपनिषद के आधार पर भक्ति का प्रसार किया। भक्ति आंदोलन पर वेदान्त सूत्र का प्रभाव अप्रत्यक्ष है। अधिकतम प्रभाव श्रीधर स्वामी की टीका(भावार्थ दीपिका) का है। श्रीधर स्वामी पुरी के

गोवर्धन मठ में महंत थे। चूंकि श्रीधर स्वामी शंकराचार्य की विचारधारा से थे इसलिए उनकी टीका अद्वैत है। यद्यपि अद्वैत दर्शन की कठोरता भक्ति द्वारा समाप्त हो जाती है जब वे विष्णु के नरसिंह अवतार की पूजा करते हैं। इस भक्ति भावना का अद्वैत दर्शन के साथ मिश्रण ही शंकरदेव के वैष्णववाद का आधार है। ठीक इसी समय शंकरदेव ने श्रीधर स्वामी की टीका का अनुसरण नहीं किया। सांख्य दर्शन और श्रीमद्भागवतपुराण का राजयोग भक्तिधारा में ही परिलक्षित होता है। भागवत के तृतीय अध्याय के अनुवाद में श्रीमंत शंकरदेव ने कपिल(अवतार कपिल मुनि नहीं) के माध्यम से सांख्य दर्शन की व्याख्या की लेकिन भक्ति के रूप में, जो ईश्वर की प्रार्थना के लिए इस्तेमाल होता है और कपिल के सांख्य के विरुद्ध है तथा जो ईश्वर में विश्वास नहीं रखता है।

भागवत के 11वें स्कन्द में पतंजलि के राजयोग का उल्लेख है जिसमें यम, नियम, 70 करोड़ से अधिक नाड़ियाँ, 6 चक्र तथा कुंडलिनी योग वर्जित हैं। शंकरदेव ने सम्पूर्ण ब्राह्मंड की तुलना मृदभांडों से की।

“तुम्ही कार्य करणा समस्ते चराचर

सुवर्णा कुंडले येन नूही भिन्नातर ”

श्रीमंत शंकरदेव ने माया की व्याख्या ऐसे रूप में की है जो सत्य पर आवरण बनाता है तथा असत्य को सत्य की तरह प्रकट करता है। ब्रह्मांड व इसका सृजन, सभी जीवात्माएँ असत हैं, जो असन्त(अपवित्र) और असत्य हैं। यद्यपि ये सत्य से उत्पन्न हुए हैं एवं वास्तविक सृजनात्मकता अथवा परमब्रह्म के कर्म के रूप में परिलक्षित होते हैं, वे असत हैं। ब्रह्म एवं जीवात्मा व अग्नि तथा चिंगारी एक समान हैं। परंतु श्रीमंत शंकरदेव ने प्रसारित किया कि यद्यपि दार्शनिक स्तर पर ईश्वर और जीवात्मा में कोई अंतर नहीं है परंतु ईश्वर की रचना होने के कारण, कुछ सीमा तक जीवात्मा ईश्वर से अलग है और ईश्वर द्वारा शासित है। इस प्रकार यहा शंकरदेव ने सीमित उद्देश्यों के लिए निर्वाण के मार्ग में महत्वपूर्ण भक्ति के लिए द्वैतवाद को स्वीकार किया।

“यद्यपि तोमाता कोरी जीवा नोहे भिन्न

टोथापितों भइलों प्रभु तोमार अधीन।

शंकरदेव ने पुनः कुरुक्षेत्र काव्य में लिखा:

ताजु अंकसा पुरुष तहर माया अंकसा!

स्वतता,राजा,तामा तिनी गुणा तन बंक्सा"

तर लवलेक्षे होवे सृष्टी स्थिति लाया।

त्रिगुण माया (सत्व,राजा,तम) अनंत पुरुष की शक्ति है और पुरुष से ही उत्पन्न होती है। यह शक्ति प्रकृति है और ईश्वर ने सृजन के कार्य में इस प्रकृति के साथ 24 तत्वों का निर्माण किया। ब्रह्माण्ड इन्ही 24 तत्वों से मिलकर बना है जिसमें से मस्तिष्क ईश्वर का प्रतिबिंब है। जीवात्मा का मस्तिष्क के साथ मिलन होता है और इस प्रकार यह प्रवृत्तियों की ओर उन्मुख होती है। पुण्य व कर्म की प्रतिबद्धताएं उनकी प्रवृत्तियों से उत्पन्न होती हैं। इससे जीवात्मा जन्म व मृत्यु के चक्र में फस जाती है। यह तब तक जारी रहता है जब तक की ईश्वर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को नष्ट नहीं कर देता। प्रलय के दौरान ब्रह्माण्ड की सम्पूर्ण विस्मृति, जीवात्मा का भौतिक शरीर नष्ट हो जाता है और दूसरा शरीर ईश्वर(हिरण्य गर्भा) के साथ अक्रिय अवस्था में रहता है। जीवन-मरण के चक्र से मुक्ति पाने के लिए ,शंकराचार्य ने ब्रह्म ज्ञान के माध्यम से निर्वाण का उल्लेख किया। श्रीधर स्वामी ने भक्ति व ज्ञान को निर्वाण का मार्ग बताया। दूसरी ओर वैष्णव गुरुओं ने ज्ञान योग और वेदों के कर्मकाण्डों के ऊपर भक्ति की सर्वोच्चता को स्थापित करने का प्रयास किया। इसके लिए श्रीमंत शंकरदेव ने भक्ति के नौ रूपों को प्रचारित किया जो हैं- श्रवण,कीर्तन,स्मरण,पादसेवन,अर्चन,बंदन,दाश्य,सखित्व और आत्मनिवेदन। भक्ति के नौ रूपों में से श्रवण व कीर्तन को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना गया है इसलिए शंकरदेव का धर्म 'नाम धर्म' के नाम से जाना जाता है। सुसुप्त माया जीवात्मा है। जब जीवात्मा जागेगी तो उसकी कोई अलग पहचान नहीं होगी। इसलिए नरनारायण के अतिरिक्त अन्य ईश्वर की पूजा करना निर्जीव वस्तुओं की पूजा के समान है। श्रीमंत शंकरदेव ने श्रवण व कीर्तन के साथ भगवान कृष्ण की पूजा हेतु आग्रह किया। यद्यपि अवतारवाद के लक्षणों को ध्यान में रखते हुए राम को भी नाम धर्म में शामिल किया जाता है जो राम-कृष्ण हैं।

शंकरदेव ने चार दुर्लभ पहलुओं को निर्वाण का आधार माना-कलि युग,मानव जीवन, ईश्वर का नाम और भारतवर्ष में जन्म।

यद्यपि 15वीं से 17वीं सदी के दौरान सम्पूर्ण देश में नव वैष्णववाद में क्रांतिकारी परिवर्तन महसूस किए गए,शंकरदेव का नव वैष्णववाद देश के दूसरे भागों के ऐसे प्रवचनों से अछूता रहा। तांत्रिक क्रियों और 15वीं सदी के असम में दूसरे धर्मों के नाम पर प्रचलित असमानता और लोगो के शोषण ने नए धर्म को प्रोत्साहित किया। देश के इस भाग को मुस्लिम आक्रमणों से कभी कोई खतरा नहीं था और इस प्रकार असम का भक्ति आंदोलन इस्लाम के प्रतिरोध का परिणाम नहीं है।

जाति व्यवस्था की अनुपस्थिति शंकरदेव के भक्ति आंदोलन की उल्लेखनीय विशेषता है। सत्र में पदाधिकारियों की नियुक्ति में जाति मुद्दा नहीं है। नामाचार्य किसी भी जाति का हो सकता है। इसी तरह इयोरी(प्रसाद वितरण करने वाला व्यक्ति) ,अंकिया नात के कलाकार, ज्ञान बयान जातीय पृष्ठभूमि के बजाय धार्मिक उपलब्धियों और व्यक्ति की अभिवृत्ति के आधार पर चयनित किए जाते हैं।

भगवान श्रीकृष्ण की आराधना भक्ति की उमंग का उच्चतम भाव है। ऐसे सामान्य अनुयाई जो केवल हरी नाम के श्रवण व कीर्तन में शामिल होते हैं उनके लिए कर्मकाण्डों(वैदिक अनुष्ठान जैसे होम,योग आदि) का कोई स्थान नहीं है। जबकि वैष्णव जो नियमबद्ध रूप से श्री कृष्ण (14 प्रसंगों के साथ) से जुड़े हैं , उनके लिए कोई उल्लेख नहीं है। वास्तविक भक्तों के लिए निर्वाण भी एक उद्देश्य नहीं है। एक वास्तविक भक्त अपनी पहचान को अक्षुण्ण रखते हुए भक्ति में लीन होना चाहता है।

दूसरे देवी देवताओं की पूजा,यहाँ तक कि चढ़ावा चढ़ाना भी पूरी तरह से निषेध है। भक्तों द्वारा केवल उन वस्तुओं को लेने की उम्मीद की जाती है जो ईश्वर को दी जा सकती हैं।

श्रीमंत शंकरदेव द्वारा मूर्ति पूजा का उल्लेख नहीं किया गया है। धुवाहाट में जगन्नाथ की मूर्ति केवल विरोधी पुजारियों को संतुष्ट करने के लिए रखी गयी। बाद में जब शंकरदेव ने दामोदरदेव को शामिल किया, कुछ सत्रों में भगवान श्री कृष्ण की मूर्ति की स्थापना प्रारम्भ हुई। शंकरदेव के अनुयायियों ने विभिन्न कारणों से मूर्तियों की स्थापना प्रारम्भ की। शायद मूर्ति के उन्मूलन को प्रसारित करना शंकरदेव का उद्देश्य नहीं था। शंकरदेव के भक्ति उपदेशों में चरम विचारों के लिए कोई स्थान नहीं है। उनके लिए भक्ति और भक्त सत्संग के लिए सर्वोच्च हैं। यद्यपि यदि कोई निर्गुण भक्ति का स्तर प्राप्त कर लेता है, उसके लिए मूर्ति पूजा का अनुसरण करना या न करना कोई मायने नहीं रखता। इस मामले में मूर्ति ऊर्जिकृत चैतन्य है और भक्त भी चैतन्य के स्तर पर होता है। यदि कोई चैतन्य के स्तर पर नहीं है, उससे मूर्ति पूजा का अनुसरण करने की उम्मीद नहीं की जाती। क्योंकि उसके लिए यह अनावश्यक जटिल कर्मकाण्ड हो जाता है जिसका कोई प्रभावशाली प्रभाव नहीं होता और उसके लिए आध्यात्मिक प्रभाव व्याकुलता भरे हो सकते हैं तथा यह अन्य भक्तों के सम्मुख दिखावे का कारण होता है। इस प्रकार एक भक्त को भगवान श्रीकृष्ण की मूर्ति पूजा से पहले सावधान रहना पड़ता है, निश्चित रूप से अन्य देवी देवताओं की मूर्ति पूजा के लिए कोई स्थान नहीं है।

यह लेख श्री हेमंत बिजोय महंत, सचिव, असोम सत्र महासभा नई दिल्ली द्वारा संकलित किया गया है।

अन्य सहयोगी हैं--डा० बिरिंची कुमार बरुआ (2009) 'शंकरदेव: वैष्णव संत आफ असम',
बीना पुस्तकालय गुवाहाटी

श्री ज्योति प्रसाद राजखोवा (2012), 'शंकरदेव: हिज लाइफ, प्रीचिंग एंड प्रेक्टिसेस'